RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 11 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 7 जून, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 11, 4-7 जून 2020 तदनुसार 25 ज्येष्ठ, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आह्वान पर घर-घर यज्ञ, हर घर यज्ञ का आयोजन दिनांक 3 मई 2020 को किया गया था। इस अवसर पर पंजाब की समस्त आर्य समाजों में और आर्य समाज के सदस्यों द्वारा अपने अपने घरों में यज्ञ किया गया। इस वैश्विक महामारी के समय में अनादि वैदिक परम्परा द्वारा पर्यावरण शुद्धि, आत्म कल्याण एवं विश्व कल्याण के लिये लाखों लोगों ने एक साथ यज्ञ करके नया इतिहास रच दिया। इस अवसर पर आर्य जनों द्वारा भेजे गये चित्र निम्न प्रकार से हैं।

सभा महामन्त्री श्री प्रेम भारद्वाज अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती गुलशन शर्मा जी के साथ यज्ञ करते हुए। आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रवेश शर्मा यज्ञ करते हुए। सभा उपप्रधान श्री सरदारी लाल जी आर्य, सभा मन्त्री श्री सुदेश आर्य जी अपने घर में यज्ञ करते हुए। सभा उपप्रधान श्रीमती राजेश शर्मा जी अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के उपप्रधान श्री देवेन्द्र शर्मा जी अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए। सभा उप प्रधान श्री स्वतंत्र कुमार जी अपने निवास स्थान पर यज्ञ करते हुये। सभा मन्त्री श्री विजय सरीन जी लुधियाना अपने परिवार के साथ घर में यज्ञ करते हुए। आर्य समाज मॉडल टॉऊन जालन्धर के प्रधान श्री अरविन्द घई जी अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए। (शेष फोटो आगामी अंक में)

यज्ञ का स्वरूप

ले.-डॉ. सुशील वर्मा, गली मास्टर मूलचन्द वर्मा फाजिल्का (पंजाब) 152123

आदिकाल से मानव आनन्द प्राप्ति एवं आत्मोन्नति के लिए प्रयत्नशील रहा है। इसी लक्ष्य सिद्धि के लिए योगी, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी सतत कार्य करते आ रहे हैं। यज्ञ इस साधना का उत्कृष्ट रूप है। अग्निहोत्र एवं यज्ञमयी भावना की सर्वप्रथम प्रेरणा मानव को स्वयं परमपिता परमात्मा से प्राप्त हुई।

उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।

आयु: प्राणं प्रजां प्रशुम् कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।

अथर्व. (9.63.1)

सृष्टिकर्त्ता ने स्वयं एक शाश्वत यज्ञ का दिव्य आयोजन कर रखा है। वह परमात्मा यज्ञ भी है

(यजु 31.7)

पुरोहित एवं होता भी है। (ऋग् 1.1.1) शतपथ ब्राह्मण ने ''यज्ञो वै विष्णु'' कहा है। (शतपथ 1.1.8.8)

प्रकृति में एक नैसर्गिक चक्र की व्यवस्था है जिसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ पुन: अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी आधार पर अहोरात्र चक्र, ऋतुचक्र, वर्ष चक्र, सौर चक्र आदि व्यवस्थित है।

इसी प्राकृतिक चक्र को परिभाषित शब्दावली में यज्ञ कहा जाता है। यजुर्वेद एवं ऋग्वेद में वर्ष रूपी यज्ञ में बसन्त ऋतु आज्य (घृत) है ग्रीष्म ऋतु समिधा एवं शरद ऋतु हव्य है। (ऋग् 10.90.7, यजु 31.14) यह प्रक्रिया अणु परमाणु से लेकर सूर्य चन्द्र आदि तक सर्वत्र चलायमान है। अत: नित्य प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है और यह यज्ञ सृष्टि चक्र का नाभि है। ''अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि (यजु 23.62) ऋग्वेद में तो यह प्रक्रिया और भी स्पष्ट ढंग से वर्णित है कि यज्ञ द्वारा द्युलोक को प्रसन्न किया जाता है और द्युलोक वर्षा द्वारा पृथ्वी को तृप्त करता है। क्योंकि यज्ञ से ही मेघ बनते हैं और मेघ से वर्षा होती है। (ऋग् 1.164.51)

यज्ञ मानव सुख के लिए है। यज्ञकर्त्ता आनन्द को प्राप्त होता है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखते हैं ''संस्कार किए द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है क्योंकि जो मनुष्य जगत का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा।'' (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका वेद विषय विचार पृष्ठ 36)

तात्पर्य यह कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही उस परमपिता द्वारा रचाए गए यज्ञ के अनुरूप ऋषियों ने यज्ञ की कल्पना की। इसी कल्पना के कारण यज्ञों का एक नाम 'कल्प' भी है। ''कल्पनात् कल्प:'' इस प्रकार यज्ञों का उद्भव वेदों से हुआ जिसका विस्तार दर्शपौर्ण मास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, पुरुषमेध, अश्वमेध आदि यज्ञों के रूप में प्राचीन ऋषियों ने किया। ब्राह्मण ग्रन्थों का समय यज्ञों का पराकाष्ठा काल था, तत्पश्चात् धर्म ग्रन्थों, गृह्यसूत्रों और श्रौत्र सूत्रों में इनका निरूपण हुआ। उपनिषत्काल में यज्ञों का महत्त्व कम होने लगा। नए नए सम्प्रदाय अपने ही ढंग से यज्ञों का प्रयोग करने लगे। असार्थक विनियोग का प्रचलन स्वछन्द रूप से होने लगा। परिणामत: यज्ञविधानों में विकृतियाँ आने लगी। यज्ञों के प्रति आस्था घटती चली गई। आज तो धूप अगरबत्तियों ने इनका स्थान ले लिया है। बिजली के बल्बों के आगे हाथ जोड़ कर संध्या कर्म कर लिए जाते हैं।

धन्य है ऋषि दयानन्द जिन्होंने वैदिक परम्परानुसार यज्ञ करने की सरल एवं शास्त्रानुकूल विधि का विधान प्रतिपादित किया। वेद मन्त्रों व गृह्यसूत्रों का विनियोग कर सन्ध्या व हवन विधि प्रचलित की। आज हम कृतज्ञ हैं उस महान ऋषि के जिन्होंने हमें वेद के अनुगामी होने की शिक्षा दी, प्रेरणा दी एवं भारतीय संस्कृति सभ्यता को जीवित रखने का उपदेश दिया।

वास्तव में यज्ञ है क्या? यज्ञ शब्द यज् धातु से नङ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। जिस कर्म में परमेश्वर का पूजन, विद्वानों का सत्कार, संगतिकरण अर्थात् मेल एवं दान किया जाता है उसे यज्ञ कहते है। क्योंकि यज्ञ धातु का अर्थ ही देव पूजा, संगितकरण एवं दान है। देवपूजा अर्थात् ईश्वरोपासना तथा विद्वत्सत्कार संगतिकरण से भाव है प्रीतिपूर्वक मन्त्र, ध्यान, मेलजोल एवं पदार्थों का एकीकरण और दान से तात्पर्य है विद्या, धन एवं शुभ कार्यों का सम्पन्न करना।

देवपूजा-देवपद का मूल अर्थ द्योतक अर्थात् प्रकाश स्वरूप है। वेद मन्त्रों की देव संज्ञा है क्योंकि इनके कारण विद्याओं का द्योतन अथवा प्रकाश होता है। देव शब्द का अर्थ परमात्मा भी है। क्योंकि वेद अर्थात् ज्ञान का और सूर्य जड़ादि का प्रकाश किया है। देव अर्थात् विद्वान भी है।

क्योंकि शतपथ का वचन है ''विद्वांसो हि देवा:'' (शतपथ 3.7.3.10) देव का अर्थ देने वाला भी है ''देवो दानाद्वा'' और देने के कारण ही देवत्व गुण उसे देवता बनाता है।

यज्ञकर्त्ता भी हवि दान कर रहा है और देव भी दे रहा है। परन्तु यज्ञकर्त्ता का दान कुछ लेने के लिए है, कुछ प्राप्ति व कामना के लिए है और वहीं देव का आदान दान के लिए है। यजमान हवि दे रहा है लेने के लिए और देव हवि ले रहा है देने के लिए।

स्वामी दयानन्द का देवपूजा से अभिप्राय विद्या ज्ञान धर्म के अनुष्ठान में लगे विद्वानों का सत्कार है। संगतिकरण का अर्थ वे विज्ञानपरक करते हैं पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्षीकरण और दान का अर्थ है शुभगुण, विद्या धर्म और सत्य का नित्य दान करना। देव पूजा है परमात्मा का सत्कार करना। चेतन पदार्थों का ही केवल सत्कार सम्भावित है, जड़ पदार्थों का सत्कार सम्भव नहीं।

संगतिकरण-यज्ञ के देवपूजा और दान तत्व व्यर्थ हो जाएगें यदि संगतिकरण न हो तो। क्योंकि देवपूजा कामना के लिए की जाती है और देने वाला वह परमात्मा दोनों में प्रीति ही यज्ञ का उद्देश्य है। अत्यन्तप्रीतिपूर्वक, प्रेम पूर्वक देवता का ध्यान, देवता का विचार तथा सत्पुरुषों का संग करना ही यज्ञ की भावना है।

व्यवहारिक रूप में सृष्टि के उपलब्ध पदार्थों का संश्लेषण तथा विश्लेषण तथा संयोग वियोग द्वारा उनके गुणदोषों का अनुसन्धान करके उनसे उपयोग लेना संगतिकरण है।

दान देने वाले की भावना जितनी अधिक निष्काम व स्वार्थ रहित होगी संगति करण उतना ही सुदृढ़ होगा। संगतिकरण के लिए आवश्यक है त्याग की भवना। इसके लिए ''इदन्नमम'' का पाठ पढ़ाया जाता है। बार बार ''इदं न मम'' का दोहराना अहंकार का उन्मूलन है।

अत: जिस क्रिया में ये तीनों तत्व-देव पूजा, संगतिकरण व दान हो, वही यज्ञ कहलाता है। और तभी यह श्रेष्ठतम कर्म बनता है। आज यज्ञ तो हो रहे हैं परन्तु यज्ञ के तीनों तत्व देवपूजा, संगतिकरण व दान का अभाव है। छोटे बड़ों का सत्कार करना नहीं चाहते। शिष्य अध्यापक का सम्मान नहीं करना चाहते और बच्चे माता पिता का अर्थात् देवपूजा का अभाव। जो बड़ों के पास है वे उसे देने के लिए तैयार नहीं है। भौतिकवाद में स्वार्थ का बोलबाला अर्थात् देवत्वभाव का अभाव। न देवपूजा, न दान, फिर संगतिकरण कैसे हो पाएगा? 'इदन्नमम' की भावना के कारण ही तो रामायण काल में श्री रामचन्द्र जी ने भ्राता भरत के लिए अयोध्या त्याग दी थी और चौदह वर्ष तक खड़ाऊँ राज्य करती रही। यह थी भारतीय संस्कृति में यज्ञ की महिमा। इसके विपरीत ''इदं मम'' के मन्त्र ने महाभारत युद्ध को लाकर खड़ा कर दिया। यही भावना आज भौतिकवाद पर हावी है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना से लाखों लोगों ने किया यज्ञ

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी ने आर्य समाज के दस नियमों में छठे नियम में सम्पूर्ण विश्व को संदेश देते हुए लिखा है कि- संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को अपनाने की प्रेरणा सम्पूर्ण मानव समाज को देता है। आर्य समाज धर्म, जाति, मजहब, मत, पन्थ, सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए कार्य करता है। महर्षि दयानन्द ने सार्वभौम नियमों के आधार पर आर्य समाज की स्थापना की है। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना के उद्देश्य को सत्यार्थ प्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में प्रकट करते हुए लिखा है कि- मेरा किसी भी नवीन मत-मतान्तर को चलाने का लेषमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना तथा जो असत्य है उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। आर्य समाज की विचारधारा वेद की सार्वभौम शिक्षाओं पर आधारित है। आज पूरा विश्व हमारी संस्कृति को अपना रहा है।

वर्तमान में हमारा देश एक भयानक महामारी के दौर से गुजर रहा है। कोरोना वायरस ने केवल हमारे ही देश को नहीं अपितु पूरे विश्व को हिला दिया है। इस महामारी के कारण चारों ओर निराशा, हताशा, भय और तनाव का माहौल है। इस वायरस के कारण लोग अपने घरों में कैद हो गए हैं। इस भय और तनाव के वातावरण को दूर करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली ने 3 मई 2020 रविवार को प्रातः 9:30 बजे एक साथ यज्ञ करने का आह्वान किया था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने सार्वदेशिक सभा के आह्वान पर सम्पूर्ण पंजाब की आर्य जनता से आग्रह किया था कि 3 मई को हम सभी मिलकर यज्ञ करें। सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी के आदेशानुसार पूरे पंजाब में आर्यजनों से एक साथ यज्ञ किया। पूरे विश्व में लाखों लोगों ने एक साथ यज्ञ करके नया कीर्तिमान स्थापित किया है। यज्ञ संसार का सर्वश्रेष्ठ कर्म है। यज्ञ के द्वारा हमें भौतिक और आध्यात्मिक दोनों लाभ प्राप्त होते हैं। यज्ञ के द्वारा वातावरण शुद्ध होता है, अनेकों बीमारियाँ दूर होती हैं, विचार शुद्ध होते है, हमारे अन्दर की नकारात्मकता दूर होती है। यज्ञ का उद्देश्य सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना को अपनाना है। यज्ञ भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है। सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना को धारण करने के लिए ही 3 मई को इस विशाल महायज्ञ का आयोजन किया गया था।

आर्य समाज ने यज्ञ के साथ-साथ जरूरतमन्द लोगों की सेवा करना भी अपना परम धर्म समझा। पूरे देश में आर्य समाजों ने मानव कल्याण के इस महान् कार्य को भी यज्ञ का रूप दिया। जरूरतमन्द परिवारों को राशन बाँटा गया। जो लोग अपने घरों के लिए सड़कों पर निकले हुए थे, खाना पकाने का कोई साधन जिनके पास नहीं था, ऐसे लोगों को आर्य समाजों में भोजन पकाकर, उसके पैकेट बनाकर वितरित किए गए। यह सेवा कार्य लगातार कई दिनों तक चलता रहा। मानव कल्याण के इस महायज्ञ में लोगों ने अपनी आहुति ड़ालकर पुण्य कार्य किया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आह्वान पर पंजाब की सभी आर्य समाजों, शिक्षण संस्थाओं से जुड़े आर्यजनों एवं कार्यकर्ताओं ने इस महायज्ञ में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने अपनी धर्मपत्नी के साथ अपने घर मे बनी यज्ञशाला में यज्ञ किया। सभा महामन्त्री श्री प्रेम भारद्वाज जी ने अपने परिवार के साथ यज्ञ किया। अन्य सभी पदाधिकारियों ने अपने-अपने परिवारजनों के साथ यज्ञ किया। इस यज्ञ ने समाज से भय एवं नकारात्मकता के वातावरण को दूर करने का काम किया। श्री सुदर्शन शर्मा जी ने संदेश देते हुए कहा कि यज्ञ हमारी संस्कृति है, हमारे ऋषि मुनियों की परम्परा है। यज्ञ से वायु प्रदूषण दूर होता है, जल शुद्ध होता है। आज जो वायरस फैल रहे हैं वे सब प्रकृति के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ का परिणाम है। यज्ञ सैनेटाईजर का कार्य करता है। यज्ञ के द्वारा अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं। यज्ञ को हम अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाएं। तभी हम प्रकृति के प्रकोप से बच सकते हैं।

इस समय पूरा विश्व इस महामारी की समस्या से जूझ रहा है। इस महामारी से तभी बचा जा सकता है जब हम अपनी भारतीय संस्कृति के अनुसार आचरण करेंगे। अपना खान-पान सात्विक करेंगे, योग प्राणायाम के द्वारा अपनी इम्युनिटी सिस्टम को ठीक रखेंगे। एक आंकलन में यह सामने आया है जिन लोगों का खान-पान सात्विक है, शाकाहारी हैं, माँस आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते हैं, प्रतिरोधक क्षमता ठीक है, ऐसे लोगों पर कोरोना का संक्रमण नहीं होता है। हमारी संस्कृति में माँस आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान का निषेध है। इसीलिए हम शाकाहार को अपनाएं और नीरोग रहें।

इस महामारी से बचने का दूसरा ऊपाय है लोगों से दूरी बनाकर रखना। आज लोग दूर से ही एक दूसरे को नमस्ते करके परस्पर अभिवादन करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति में हाथ मिलाकर, गले मिलकर आलिंगन किया जाता है, परन्तु आज उन देशों में भी लोग एक दूसरे को दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते कर रहे हैं। हमारी वैदिक संस्कृति में अभिवादन के लिए नमस्ते का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए हमारी संस्कृति को सार्वभौम संस्कृति कहा जाता है। अगर हम कोरोना के संक्रमण से बचना चाहते हैं तो सामाजिक दूरी का पालन करें। एक दूसरे के स्पर्श से दूर रहें। भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर जाने से बचें। सामाजिक दूरी ही हमें कोरोना के संक्रमण से बचा सकती है।

कोरोना एक जानलेवा महामारी है। इस महामारी से बचने के लिए हम हाथों को बार-बार साबुन से धोते रहें। अपने आसपास सफाई का विशेष ध्यान रखें। अपने मुंह को मास्क, रूमाल आदि से ढ़ककर रखें। सैनेटाईजर का प्रयोग करते रहें। इन ऊपायों से ही हम कोरोना को मात दे सकते हैं।

मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने सभा के दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए अपना पूर्ण सहयोग दिया। पूरे पंजाब में लोगों को घर-घर यज्ञ करते के लिए प्रेरित किया। गरीबों के कल्याण के लिए सेवा कार्य को शुरू किया, जरूरतमन्द लोगों को घर-घर जाकर राशन दिया। संसार की उपकार करना ही आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज ने इस महामारी के दौर में महर्षि दयानन्द की उस भावना को सार्थक करने का प्रयास किया। आर्य बन्धुओं! हमें अभी भी सावधान होकर कार्य करना है। अभी कोरोना का संक्रमण पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। हमें सरकार के निर्देशों का पालन करते हुए ही कार्य करना है।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

अन्त:करण (मन) का सदुपयोग

ले.-महात्मा चैतन्यस्वामी महर्षि दयानन्द धाम सुन्दर नगर (हि.प्र.)

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित:।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महीं देवस्य सवितु: परिष्टुति:।। (ऋ. ४-२४-१)

महर्षि दयानन्द जी इसका भावार्थ इस प्रकार करते (ऋ. भा. भू. उपा.) हैं-(युज्ते मन.) इसका अभिप्राय यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है अर्थात् उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें। और जो लोग ईश्वर के उपासक (विप्रा:) अर्थात् बड़े बड़े बुद्धिमान (होत्रा:) उपासनायोग के ग्रहण करने वाले हैं, वे (विप्रस्य) सबको जानने वाले (बृहत:) सबसे बड़ा (विपश्चित:) और सब विद्याओं से युक्त जो परमेश्वर है, उसके बीच में (मन: युज्ते) अपने मन को ठीक ठीक युक्त करते हैं तथा (उत) (धिय:) अपनी बुद्धिवृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी (युज्ते) सदा परमेश्वर ही में स्थिर करते हैं जो परमेश्वर इस जगत को (विदधे) धारण और विधान करता है। (वयुनाविदेक इत्) जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रजा का भी साक्षी है, वही एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक है कि जिससे परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। (देवस्य) उस देव अर्थात् सब जगत् के प्रकाश और (सवितु:) सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की (परिष्टुति:) हम लोग सब प्रकार से स्तुति करें। कैसी वह स्तुति है कि (मही) सबसे बड़ी अर्थात् जिसके समान किसी दूसरे की हो ही नहीं सकती।

महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में मुक्ति एवं बन्धन की विशद विवेचना की है तथा वहां मुक्ति के साधनों में 'साधन-चतुष्टय' की चर्चा करते हुए 'षटक्-सम्पत्ति' के अन्तर्गत दम की चर्चा की है। दम का भाव है मन को नियन्त्रित करके उपासनायोग में लगाना। मनु महाराज ने धर्म का तीसरा लक्षण 'दम' बताया है अर्थात् व्यक्ति का अपने ऊपर संयम होना चाहिए। दम की महता के सम्बन्ध में महर्षि व्यास जी कहते हैं-

दमेन सदृश धर्मं, नान्यं लोकेषु शुश्रुम।

दमो ही परमो लोके, प्रशस्त: सर्वधर्माणम्।।

(महा. १६०-१०)

अर्थात् हमने सब लोगों में दम के समान और कोई दूसरा धर्म नहीं सुना है। सब धर्मात्माओं के लिए जगत् में दम ही सर्वश्रेष्ठ है। महर्षि व्यास जी ने बहुत ही सार्थक बात कही है, वास्तव में ही जिसने स्वयं को ही नहीं जीता वह तो मानों लाखों-करोड़ों होने पर भी भिखारी ही है। स्वयं को जीतने से ही व्यक्ति विकार रहित हो सकता है तथा उसमें मानसिक एवं आत्मिक दृढ़ता आती है। मन को एक ऐसा यन्त्र कह सकते हैं जो हमें अत्यधिक उच्चावस्था पर भी ले जा सकता है और निम्न से निम्न अवस्था में भी पटक सकता है। जिस व्यक्ति के पास मानसिक शक्ति नहीं है वह चाहे कितना ही बलवान हो अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता है मगर जिसकी अपने मन पर पकड़ है वह अल्प शक्तिशाली होते हुए भी बड़े से बड़ा कार्य को करने में सफल हो जाता है। व्यक्ति को चाहे किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी हो, मन ही उसका आधार है। मन को संयमित करने से व्यक्ति के भीतर अपार बल और साहस की वृद्धि होती है तथा वह निष्पाप और निर्भीक हो जाता है-

दमस्तेजो वर्धयति, पवित्रं दम उच्यते।

विपाप्मा निर्भयो दान्त: पुरूषो विन्दते महत्।। (महा. ऋ.२२०-४)

अर्थात् दम तेज को बढ़ाता है, अन्त:करण को पवित्र करता है। दम का अभ्यासी निष्पाप तथा निर्भीक होकर महान् फल को प्राप्त करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार ये विकार ही व्यक्ति के सभी दु:खों का कारण है मगर ये भी उसी व्यक्ति को सताते हैं जिसका अपने ऊपर संयम नहीं है। इनमें से कोई एक विकार भी व्यक्ति की परशानी का कारण बन सकता है। आप कल्पना कीजिए कि किसी व्यक्ति के भीतर काम वासना की भावना उठ खड़ी हुई है। ऐसी स्थिति में वह सो नहीं सकेगा। उसे किसी प्रकार से भी चैन प्राप्त नहीं होगा मगर यदि चिन्तन के स्तर को आध्यात्मिकता की ओर मोड़कर वह अपनी चित्त-वृत्ति को संयमित कर लेता है तो उसे चैन की नीन्द आएगी। मन की विकारग्रस्त स्थिति ही व्यक्ति के समस्त दु:खों का कारण है तथा इसके विपरीत विकाररहित स्थिति ही व्यक्ति के सुख और आनन्द का आधार है-

सुखं दान्त: प्रस्वपिति, सुखं च प्रतिबुध्यते। सुखं लोके विपर्येति, मनश्चास्य प्रसीदति।।

(महा. ऋ. २२०-५)

दमेन हि समायुक्तो, महान्तं धर्ममश्नुते। सुखं दान्त: प्रस्वपिति, सुखं च प्रतिबुध्यते।।

(महा. ऋ. १६०-१२)

दम का अभ्यासी सुखपूर्वक सोता है और सुखपूर्वक जागता है। वह संसार में सुख से व्यवहार करता है और उसका मन सदा ही प्रसन्न रहता है। दम से युक्त व्यक्ति महान् धर्म को प्राप्त करता है। उसका जागना और सोना सुखपूर्वक होता है इसके विपरीत जो दम का अभ्यासी नहीं है उसके बारे में कहा गया है कि-

अदान्त: पुरूष: क्लेशम-भीक्ष्णं प्रतिपद्यते।

अनर्थाश्च बहून्नन्यान् प्रसृजत्यात्मदोशजान्।।

(महा. ऋ. १६०-१३)

नदान्तस्य क्रियासिद्धिर्य-थावदुपपद्यते।

क्रिया तपश्च सत्यं च, दमे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

(महा. ऋ. २२०-३)

दम से रहित व्यक्ति बार-बार क्लेश को प्राप्त होता है और अपने दोषों से उत्पन्न अन्य अनेक अनर्थों को जन्म देता है। जो व्यक्ति दम से रहित है उसके किसी भी कार्य की सिद्धि ठीक प्रकार से नहीं होती है। क्योंकि उत्तम क्रिया, तपस्या और सत्य ये सब दम में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। यहां महाभारतकार का कहना है कि संसार में जितने भी अच्छे कार्य हैं अर्थात् धर्म-कृत्य हैं उन्हें केवल दम का अभ्यासी ही कर सकने में समर्थ हो सकता है। वही सब प्रकार की उत्तम क्रियाएं कर सकता है, वही तपस्या एवं उपासना कर सकता है और वही सत्य मार्ग पर दृढ़ होकर पुण्य कमा सकता है। असंयमित व्यक्ति की वृत्ति इन कार्यों की ओर जा ही नहीं सकती है और यदि क्षणिक भावना बन भी गई तो असंयमित मन के वशीभूत होकर वह इन पुण्य कार्यों से शीघ्र ही उपराम होकर इनका त्याग कर देगा। मन की दृढ़ता के अभाव में ही व्यक्ति सत्यमार्ग पर नहीं चल पाता है। साधना के मार्ग पर नहीं चल पाता है। धर्म और अध्यात्म के मार्ग पर नहीं चल पाता है। लम्बे काल तक उपासना नहीं कर पाता है।

जिसने दम की सिद्धि प्राप्त कर ली है वह व्यक्ति संसार में श्रेष्ठ कार्य करता हुआ वास्तविक धर्म की सिद्धि को प्राप्त कर सकेगा अन्य नहीं। हमारे शास्त्रों में उसे धर्म कहा गया है जिससे व्यक्ति इस लोक और परलोक की उन्नति को प्राप्त हो सके मगर ऐसी सिद्धि भी संयमित मन वाला व्यक्ति ही कर सकता है अन्य नहीं। क्योंकि मन के संयमित होने पर व्यक्ति का पूरी तरह से रूपान्तरण हो जाता है। उसका चिन्तन स्तर अन्य साधारण लोगों से बहुत ऊँचा हो जाता है। वह पूर्णत: रूपान्तरित होकर स्व-स्थिति को प्राप्त हो जाता है-

न हृष्यति महत्यर्थे, व्यसने च न शोचति।

स वै परिमितप्रज्ञ:, स दान्तो द्विज उच्यते।।

(महा. ऋ. २२०-१६)

दम का अभ्यासी व्यक्ति बहुत बड़ा सांसारिक लाभ होने पर भी हर्षित नहीं होता और कोई बहुत बड़ी आपत्ति आने पर शोक नहीं करता, ऐसी संयत बुद्धिवाला विद्यावान् व्यक्ति दान्त कहलाता है। गीताकार के शब्दों में कहें तो ऐसा व्यक्ति ही स्थित-प्रज्ञ बनता है। आत्म-चेता बनता है।

आर्य समाज के द्वितीय नियम की वेदमूलकता

ले.-वीरेन्द्र कुमार अलंकार अध्यक्ष, दयानन्द चेयर फॉर वैदिक स्टडीज् एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

सर्वशक्तिमान् विशेषण की वेदमूलकता-ईश्वर जीव व प्रकृति इन तीन तत्वों में कर्म करने की क्षमता चित्व होने से केवल ईश्वर और जीव में ही है। दोनों में भेद यह है कि शरीरधारी जीव अल्पशक्तिमान है और ईश्वर सर्वशक्तिमान्। अल्पशक्तिमान होने से जीव को अधिकांश कर्मों के सम्पादन में किसी दूसरे जीव की सहायता लेनी ही पड़ती है। वस्त्र, रोटी, मकान, ज्ञान, विज्ञान सबमें ही जीव सहायता लेकर अपने कार्य साधता है जबकि सर्वशक्तिमान् होने से ईश्वर अपने समस्त कार्य स्वयं ही करता है। यही उसकी सर्वशक्तिमता है। जीव की शक्तिमता में अपूर्णता है और ईश्वर की शक्तिमता में पूर्णता। दोनों के कर्म का क्षेत्र अलग-अलग है। जीव के निर्धारित कार्यों को ईश्वर नहीं करता। ईश्वर न किसी के लिए खाना बनाता है, न चाय, पिज्जा। इसी प्रकार ईश्वर के निर्धारित कार्य जीव नहीं कर सकता। जीव कभी न सूर्य बना सकता है, न मंगल ग्रह और न ही धरती। ईश्वर शक्तिमान इसलिए है कि समस्त ब्रह्माण्ड के संचालन का सम्पूर्ण सामर्थ्य उसमें है। ईश्वर के इन सामर्थ्यों का वर्णन इन्द्र, वरूण, विष्णु, अश्विनी आदि सूक्तों में देखा जा सकता है। यह सृष्टि उस ईश्वर ने अकेले ही उत्पन्न की है। इसलिए उसे सहस्त्रशीर्षा, सहस्त्राक्ष और सहस्त्रपात् कहा गया है-सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात। (ऋग्वेद-10.70.1)। वेद में ईश्वर को शुष्मी कहा गया है। शुष्मी का अर्थ है-सर्वशक्तिमान्। सारे जगत् का नियन्ता अकेला ईश्वर ही है, इसकी पुष्टि वैयाकरणों ने भी की है। वैयाकरणों की स्थापना है कि काल सबसे बड़ी शक्ति है और ईश्वर शक्तिमान् है। ईश्वर अकेला ही इस कालशक्ति के द्वारा जगत् का संचालन करता है। पेड़ पर बौर आना, फल पकना, सब्जियों का अपने आप अंकुरित होना, फिर समाप्त होकर नई सब्जियों, फलों का आना यह सब क्यों होता है। इसका कारण है काल। यह काल शक्ति ईश्वर की है। इसलिए ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है। वेद में ईश्वर को शकुनि कह गया है। शकुनि का अर्थ है-सर्वसाम-र्थ्यवान्।

4. न्यायकारी व दयालु विशेषण की वेदमूलकता-सर्वशक्तिमान् ही पूर्ण न्यायकर्ता हो सकता है और न्यायकारी ही दयालु हो सकता है। तीन अनादि तत्वों में एक जड़ तत्व है-प्रकृति और चेतन तत्व दो हैं-ईश्वर व जीव। पूर्ण न्याय वहीं कर सकता है, जो सर्वविद् हो, अल्पज्ञ नहीं। अतः सर्वज्ञ होने से ईश्वर ही न्यायकारी है। वेद में ईश्वर को अर्यमा कहा गया है। अर्यमा का अर्थ है-न्यायकारी व न्यायकारी का अर्थ है-न्यायं कर्तु शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः, जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने का ही स्वभाव है। वेद में रूद्रदेवताक मन्त्रों में ईश्वर की न्यायव्यवस्था के प्रभूत सन्दर्भ विद्यमान हैं। ईश्वर का एक नाम यम भी है। यम हमारे शुभ-अशुभ कर्मों व मार्गों को जानता है-यमो नो गातुं प्रथमा विवेद (ऋग्वेद-10.14.2)। वह यम ही कर्म करने वाले मनुष्यों को उनके कर्मों के भोगों के योग्य प्रदेशों की ओर ले जाता है। उसकी न्यायव्यवस्था कभी विच्छिन्न नहीं होती।

हम सामाजिक प्राणी हैं. हम दो व्यवस्थाओं में जीते हैं-एक ईश्वरीय व्यवस्था और दूसरी मानवीय व्यवस्था। यह सम्भव है कि पाप कर्म करने पर भी कोई व्यक्ति मानवीय व्यवस्था की आँखों में धूल झोंक कर दण्ड से बच जाए या साक्ष्यों के अभाव के कारण न्यायाधीश अपराधी को दण्ड न दे पावे, क्योंकि मानवीय व्यवस्था में अल्पज्ञता है, किन्तु ईश्वर तो सर्वज्ञ है। अतः सर्वज्ञ ईश्वर की व्यवस्था में न्याय से बचना सम्भव नहीं है। भले ही कोई किसी भी सम्प्रदाय के पूजाघर में प्रार्थना करे।

यहाँ प्रश्न यह है कि यदि किसी भी पूजा पाठ से ईश्वर प्रसन्न होकर हमारे अपराध क्षमा नहीं करता, तो वह दयालु कैसे हुआ। ऋषि दयानन्द की यह बड़ी मौलिक देन है कि न्यायकारी ही दयालु हो सकता है, अन्यायकारी नहीं। ईश्वर की हम पर यह दया ही है कि दुष्टों को रुलाता है। रुद्र की यह निरुक्ति देखिए-रोदयत्यन्याय-कारिणो जनान् स रुद्रः। दुष्टानां रोदयिता। ईश्वर की दयालुता में ये तीन पक्ष हैं (क) यदि ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता तो वेद में ऐसी प्रार्थनाएं क्यों हैं? प्रार्थना के फल के लिए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका द्रष्टव्य है। प्रार्थना और प्रायश्चितविधि में जीव अपने उदात्त भावों की अभिव्यक्ति करता है। जिनमें कर्मनिष्ठा भी है और पुनः उसी पाप कर्म को न दोहराने का संकल्प भी। मूल बात तो यह है कि ईश्वर अपराध क्षमा कर ही नहीं सकता। अपराध क्षमा करना दयालुता नहीं है। जिसके प्रति अपराध किया जाता है या जो अपराध से प्रभावित होता है, वही अपराध को क्षमा करने के लिए अधिकृत होता है। हमारे अपराध से ईश्वर प्रभावित नहीं होता। वह निर्विकार है। हाँ, कल्पना कीजिए दुर्भागचन्द्र ने रविदत्त को अपशब्द कहे या मार-पिटाई की और वह क्षमा मांगे किसी हरिदत्त से, तो क्या हरिदत्त को माफी देने का अधिकार है? नहीं। हाँ, प्रभावित रविदत्त चाहे तो क्षमा कर सकता है। अपराध साबित होने पर कोर्ट भी उसे क्षमा नहीं कर सकता। यही व्यवहार है। उदारचेता ऋषि दयानन्द ने विष देने वाले जगन्नाथ को स्वयं ही क्षमा किया। किन्तु यदि विष राजा को दे दिया जाता तो फिर ऋषि दयानन्द को भी क्षमा करने का अधिकार नहीं था। यदि अपराध किसी प्राणी या समाज के प्रति है, तो ईश्वर कैसे क्षमा कर सकता है। फिर भी ईश्वर इसलिए दयालु है कि जो व्यक्ति सारी उम्र ईश्वर को कोसता रहा, यदि वह जीवन के सन्ध्याकाल में भी ईश्वर के सान्निध्य में आना चाहे, तो उसे तुरन्त ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त होगी। वेद का च्यवन-आख्यान इसका उदाहरण है। यह क्या कम दयालुता है परमेश्वर की? जबकि लोक में इतना दयालु विरला ही होता है। (ख) ईश्वर की दयालुता का दूसरा पक्ष यह है कि परमेश्वर ने ही प्राणीमात्र के जीवन की सब व्यवस्थाएँ की हैं। शाक, फल, वनस्पतियाँ, सरित्, पर्वत, अन्न, ज्ञान का प्रकाश, सूर्य, चन्द्र से सब पर ईश्वर की दयालुता नहीं है क्या? (ग) ईश्वर की दयालुता में तीसरा पक्ष यह है कि न्यायकारी के समक्ष ही हम प्रार्थना किया करते हैं। हमारे उदात्त भावों की पदार्थों के देने वाले और महाबलवान् और वेगवान् आप उत्तम गुण और पदार्थों के सेवन करने और अन्नादि पदार्थों की वृष्टि करने वाले हो, अतः आप हम पर वर्षा कीजिए-उद्वातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रम वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद।। (ऋग्वेद-2.43.2)। हे परमात्मन् आप हमारे माता पिता और प्रिय शरीरों की हिंसा मत करें-मा नस्तीके तनये मा न आयो मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः (ऋग्वेद 1.114.7)। हमारा वध मत करें अर्थात् अपने से अलग हमको न करें-मा नो वधीः (ऋग्वेद-1.114.7)। ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है-देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षति हितमित्रो न राजा (ऋग्वेद-1.73.3)। इस प्रकार अनेक मन्त्रों में ईश्वर के दयालु रूप का वर्णन है। ईश्वर दयालु इसलिए है कि वह दुःखहर्त्ता है। ईश्वर त्वष्टा है। त्वष्टा का अर्थ है-त्वक्षति तनुकरोति दुःखानि-जो दुःखों को क्षीण करता है, वह सबको सुख देता है, इसलिए वह सुदत्र भी है-सुष्ठु सुखं ददाति सः।

(क्रमशः)

महर्षि दयानन्द के कुछ प्रेरक व शिक्षाप्रद प्रसंग

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोविन्द राय आर्य एण्ड सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

वैसे तो महर्षि दयानन्द के जीवन में सैकड़ों प्रेरक व शिक्षाप्रद प्रसंग है, पर यहाँ पर कुछ प्रसंगों को ही प्रस्तुत करते हैं। वे इसी भाँति है।

1. मैं ज्ञानी भी और अज्ञानी भी-गुजरात में डॉ. विशनदास यद्यपि वेदान्ती थे। उन्होंने महर्षि जी से निवेदन किया कि लाहौर से निवृति पाकर गुजरात की जनता को भी उपकृत करने की कृपा करें। महर्षि जी पौष सुदी नवमी, संवत् 1934 को गुजरात पहुँच गये। एक दिन दमदमे में विश्राम किया। अगले दिन फतहनगर जाकर ठहर गये। प्रवचनों के पश्चात पादरी और मौलवी विभिन्न धार्मिक विषयों पर चर्चा करते हैं और शंका का समाधान महर्षि जी करते। महर्षि जी इस समय तक समझाते जिस समय तक जिज्ञासु की जिज्ञासा शान्त न हो जाती। महर्षि जी अपने तर्कों और प्रमाणों से मिथ्यावादियों के मुँह बन्द कर देते। एक दिन कुछ लोगों ने परामर्श किया कि दयानन्द से कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाये कि वे निरूत्तर हो जाएँ। उन्होंने निश्चय किया कि अगली सभा में महर्षि जी से पूछें कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं? यदि उन्होंने कहा हम तो ज्ञानी हैं, तो हम उनसे कहेंगे कि आप तो घमण्डी हैं। विद्वान कभी घमण्डी नहीं होते। यदि उन्होंने कहा कि अज्ञानी हैं तो हम झट कह देंगे कि फिर दूसरों को आप क्या शिक्षा देंगे? ऐसा प्रश्न सोचकर वे बहुत प्रसन्न हुए और महर्षि जी के पास पहुँच गये। उनके समीप बैठकर एक ने प्रश्न किया-''महर्षि जी आप ज्ञानी हैं कि अज्ञानी?'' महर्षि जी ने तुरन्त उत्तर दिया-''मैं ज्ञानी भी हूँ और अज्ञानी भी।'' पण्डितों में से एक ने फिर प्रश्न किया-''दोनों कैसे हो सकते हैं आप?'' महर्षि ने कहा ''जिन विषयों को मैं जानता हूँ, उनमें ज्ञानी हूँ, जिन विषयों को मैं नहीं जानता उसमें मैं अज्ञानी हूँ।

पण्डितों के पास और कोई प्रश्न नहीं था। वे चुपचाप उठकर चले गये। मार्ग में चर्चा कर रहे थे कि महर्षि जी को विद्वत्ता में परास्त करना सम्भव नहीं है।

2. महर्षि दयानन्द की दया-एक पाठशाला में पण्डित जी पढ़ाते थे। उन्होंने अपने छात्रों से कहा कि हम सभी कथा सुनने चलेंगे। तुम अपनी पुस्तकों के थैलों में ईंट-रोड़े और पत्थर भर कर वहाँ बैठना। जब मैं संकेत करूँ, उसी समय कथा करने वाले पण्डित के ऊपर ये कंकड़-पत्थर बरसा देना, फिर हम तुम्हें लड्डू देंगे। वह पण्डित उन बच्चों को लेकर महर्षि जी की सभा में पहुँच गया। साँझ होते ही उसने छात्रों को संकेत कर दिया बच्चों ने महर्षि पर कंकड़-पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। उनमें से कुछ बच्चों को पुलिस ने पकड़ कर महर्षि जी के सामने प्रस्तुत कर दिया। बच्चे डर रहे थे। महर्षि जी ने प्यार से पूछा कि तुम हमारे ऊपर पत्थर क्यों फेंक रहे थे? बच्चों ने पण्डित जी द्वारा कही गई सारी बातें महर्षि जी को बता दी। महर्षि जी ने तुरन्त लड्डू मँगवाए और बच्चों में बाँट दिया।

3. सत्य कहने में हमें कोई भय नहीं-महर्षि दयानन्द सरस्वती एक निर्भीक संन्यासी थे। अपनी बात को सरल सपाट शब्दों में कहने से वे कभी नहीं चूकते थे। सभी जानते थे कि महर्षि जी किसी भी मत की उन बातों का खण्डन करते हैं जो अतार्किक, अव्यवहारिक और वेद-विरुद्ध हों।

महर्षि जी की प्रवचन-सभा चल रही थी। उसी मार्ग से डिप्टी कलैक्टर अलीजान जा रहे थे। वे भी महर्षि जी के प्रचार कार्य से अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने अपनी सवारी रोकी और महर्षि जी से बोले कि अपने व्याख्यानों में आप बहुत कठोरता से काम लेते हैं। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। महर्षि जी ने तपाक से उत्तर दिया कि हम असत्य कभी नहीं कहते। सत्य कहने में हमें कभी किसी से भय नहीं है।

4. अन्न दूषित नहीं होता-महर्षि जी प्रचारार्थ फर्रूखाबाद (उ०प्र०) में पहुँचे। नगर के बाहर लाला जगन्नाथ के विश्रान्तघाट पर जाकर विराजे। नियमित रूप से नगरवासी उनके प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। कुछ पण्डित लोग महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने की चर्चा तो करते परन्तु उनके सम्मुख आने का साहस न जुटा पाते।

उस नगर में घर-गृहस्थी बसाकर रहने वाले कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें साधु कहकर पुकारा जाता था, परन्तु उनके हाथ का बना भोजन ब्राह्मण नहीं करते थे। एक दिन एक श्रद्धालु साधु परिवार का सदस्य अपने घर कढ़ी भात बनवाकर महर्षि जी की सेवा में उपस्थित हुआ और भोजन लेने की प्रार्थना की। भोजन का समय था। महर्षि जी ने प्रेमपूर्वक शान्त भाव से भोजन किया। इस बात की जानकारी जब वहाँ के ब्राह्मणों को हुई तो उन्होंने भारी विरोध किया। वे महर्षि जी के समीप जाकर बोले कि हम लोग भी इन साधुओं द्वारा बनाया भोजन नहीं करते हैं। उनके हाथ का बना भोजन करके आदमी पतित हो जाता है। ऐसा करना आपके लिए उचित नहीं था।

महर्षि जी उनकी बातें सुनकर हँसते हुए बोले कि किसी के हाथ से बना अन्न दूषित नहीं होता। अन्न दुषित तब होता है जब वह अनुचित साधनों से प्राप्त किया जाये या उसमें किसी अखाद्य वस्तु का मिश्रण कर दिया जाये। इन लोगों का अन्न परिश्रम से कमाया हुआ अन्न है, इसलिए इसके ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। ऐसे पवित्र अन्न को ग्रहण करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

5. सत्य का प्रकाश करना मेरा धर्म है-भाद्रपद द्वादशी संवत् 1936 को महर्षि जी बरेली (उ.प्र.) पहुँचकर लाला लक्ष्मीनारायण की कोठी में ठहर गये। उनके प्रवचनों में सामान्य जनों के अतिरिक्त उच्च सरकारी अधिकारी भी भाग लेते थे। एक दिन प्रवचन में महर्षि जी ने ईसाई धर्म के सम्बन्ध में कहा कि ये लोग कुमारी से पुत्र होना बताते हैं और उसके लिए परमात्मा को दोषी ठहराते हैं।

इससे सभा में उपस्थित कमिश्नर साहब क्रोधित हो गए और लक्ष्मीनारायण को बुलाकर कहा कि अपने पण्डित को समझाइए। वे अपने व्याख्यानों में कठोरता न बरतें। हम लोग तो शिक्षित है। हिन्दू और मुसलमान भड़क गए तो स्वामी जी को भारी पड़ जायेगा।

लक्ष्मीनारायण जी ने साहस करके यह सूचना महर्षि जी को दी। अगले दिन स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में स्पष्ट किया कि कुछ सज्जन मुझे कहते हैं कि सत्य न कहें। ऐसा करने से कलैक्टर कमिश्नर साहब रुष्ट हो जायेंगे। महर्षि जी ने गरजते हुए कहा कि चक्रवर्ती राजा भी चाहे कुपित क्यों न हो जाए, परन्तु दयानन्द सत्य का प्रकाश करने से नहीं रुक सकता। उन्होंने आगे कहा कि दयानन्द के शरीर को नष्ट किया जा सकता है, परन्तु दयानन्द की आत्मा को छिन्न-भिन्न करना किसी के वश की बात नहीं है। अपने शरीर की रक्षार्थ दयानन्द सत्य के रास्ते में नहीं हट सकता।

6. तोप का भय दिखाने पर भी वेद की श्रुतियाँ ही निकलेंगी-मेरठ से महर्षि जी ने सहारनपुर के रास्ते देहरादून के लिए प्रस्थान किया। वे सहारनपुर स्टेशन पर कुछ समय रुके और अपने भक्तों से संक्षिप्त वार्तालाप किया। उस समय उनके एक भक्त लाला भोलानाथ वैश्य ने चिन्तित होकर कहा कि महाराज, जैनी आपको गिरफ्तार कराकर कारावास में डलवाना चाहते हैं। उन्होंने इस आशय का विज्ञापन छपवा दिया है। इस पर महर्षि जी मुस्कुराये और बोले, ''भोलानाथ जी, मुझे कोई तोप के मुख पर बाँध कर भी पूछे कि सत्य क्या है? तब भी दयानन्द के मुख से वेद की श्रुतियाँ ही निकलेंगी।

यज्ञ करो और जीवन पवित्र बनाओ

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, कोटा

वेदों में देव यज्ञ पर बहुत कुछ कहा गया है और उसे नित्य कर्म में आवश्यक बताया है। स्वामी दयानन्द ने देव यज्ञ को पर्यावरण शुद्धि का महत्वपूर्ण साधन माना है। यज्ञ के विषय में चारों ही वेदों में पर्याप्त वर्णन हुआ है। देव यज्ञ से जीवन में पवित्रता भी आती है। इस लेख में हम इसी विषय पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

वसोःपवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्मसि सहस्त्रधारम्।

देवस्त्वा सविता पुनातुः वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वाकामधुक्षः। यजुर्वेद 1.3

अर्थ-जो (वयोः) यज्ञ (शतधारम्) सैकड़ों संसार का धारण करने वाला और (पवित्रम् असि) पवित्र करने वाला कर्म है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्त्र धारम्) अनेकों ब्रह्माण्डों को धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख देने वाला है। (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (सविता) तेंतीस देवों का उत्पादक परमात्मा (पुनातु) पवित्र करे। हे जगदीश्वर। आप हम लोगों से सेवित (वसोः) जो यज्ञ है उस (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान (शतधारेण) बहुत विद्याओं को धारण करने वाले वेद और (सुप्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिए। हे विद्वान् पुरूष। तू (काम) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को (अधुक्षः) अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहता है।

भावार्थ-जो मनुष्य पूर्वोक्तयज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं उनको परमेश्वर बहुत सा ज्ञान देकर अनेक प्रकार से सुख देता है।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युमक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मे त्वा युनक्ति।

कर्मणे वां वेषाय वां।।

यजुर्वेद 1.6

अर्थ-(कः) कौन (त्वा) तुझको अच्छी-अच्छी क्रियाओं के सेवन के लिए (युनक्ति) आज्ञा देता है। (सः) वह परमेश्वर (त्वा) तुझको विद्या आदि शुभ गुणों के प्रकट करने के लिए विद्वान् वा विद्यार्थी होने को (युनक्ति) आज्ञा देता है। (कस्मै) वह किस-किस प्रयोजन के लिए (त्वा) तुझको (युनक्ति) आज्ञा देता है। (तस्मै) पूर्वोत्तम सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिए (त्वा) धर्म का प्रचार करने वाले तुझ को (युनक्ति) आज्ञा देता है। (कः) वही परमेश्वर (कर्मणे) उक्त कर्म करने के लिए (वाम्) कर्म करने और कराने वाले को नियुक्त करता है (वेषाय) शुभ गुण और विद्याओं की प्राप्ति के लिए (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगों को उपदेश करता है।

वाचस्पतये पवस्व वृष्णतेऽ अंशुभ्यां गभस्तिपूतः।

देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि।। यजु. 7.1.

अर्थ-हे मनुष्य। तू (वाचः) वाणी के (पतये) पालन हारे ईश्वर के लिए (पवस्व) पवित्र हो (वृष्ण) बलवान पुरूष के (अंशुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर-भीतर का व्यवहार होने के लिए जैसे (गभस्तिपूत) सूर्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (देवाः) दिव्यगुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन विद्वानों की (भागः) सेवन करने योग्य है उन (देवेभ्यः) देवा के लिए (पवस्व) पवित्र हो।

भावार्थ-इस मंत्र में वाचलुप्तोपमालंकार है। सभी मनुष्यों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले पवित्र परमात्मा को जान कर विद्वानों के संग से विद्या आदि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्य वक्ता बनो।

यज्ञ द्वारा जीवन को पवित्र बनाने के विषय में आगे कहा गया है-

आयुर्यज्ञेन कल्पत्तां प्रणो यज्ञेन कल्पत्तां चक्षु यज्ञेन कल्पत्तां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पत्तां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां।। यजुर्वेद 18.29

अर्थ-(आयुः) मेरा सम्पूर्ण जीवन (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। इसी प्रकार (प्राणः) मेरी प्राण शक्ति (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (चक्षु) मेरी आंख (यज्ञेन कल्पताम्) यज्ञ के लिए सिद्ध होवे। (श्रोत्रं) मेरे कान (यज्ञेन कल्पताम्) यज्ञ के लिए सिद्ध होवे। (वाक्) मेरी वाणी (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (मनः) मेरा मन (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (आत्मा) मेरी आत्मा (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता मैं (यज्ञेन) अपने को यज्ञ के लिए सिद्ध करूं। (ज्योतिः) मेरा अन्तः प्रकाश (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (स्व) मेरा सर्व शरीर व्यापी व्यान वायु (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (पृष्ठम्) मेरा सारा प्रभु स्तवन (यज्ञेन) यज्ञ के लिए (कल्पताम्) सिद्ध होवे। (यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्) मेरा यज्ञ भी यज्ञ के लिए ही सिद्ध होवे।

ऋग्वेद में भी यज्ञ से अपने को पवित्र करने का आदेश है।

सखाय आ निषोदत पुनानाय प्रगायत।

शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये।। ऋ. 9.104.1

अर्थ-(सखायः) हे उपासक मित्रों। आप (आनिषोदत) यज्ञ वेदी पर आकर स्थिर होवें। (पुनानाय) जो सबको पवित्र करने वाला है उसके लिए (प्रगायत) गायन करो। (श्रिये) ऐश्वर्य के लिए (शिशुम्) जो प्रशंसा के योग्य है उसको (यज्ञैः) यज्ञ के द्वारा (परिभूषत) अलंकृत करो, पवित्र करो।

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः।। साम. मंत्र संख्या 385

अर्थ-(आ) सब प्रकार से (मधोः) मधु से भी (मदिन्तरम्) अत्यन्त आनन्द दायक (सिञ्च) यज्ञ के पात्र को पूरा कर। (अध्वर्यो) हे कल्याणकारी यज्ञ के ऋत्विक् (अन्धसः) अन्न से तैयार (एवाहि) ऐसी ही (वीर) हे वीर अध्वर्य। (स्तवते) स्तुति की जाती है (सदावृधः) परोपकार के करने वालों को सर्वदा बढ़ावा देने वाले परमात्मा की।

भावार्थ-हे यज्ञ आदि उत्तम काम के करने वाले पुरूष। अन्न से तैयार, मधु से भी अधिक आनन्द देने वाले, सोमरस को यज्ञ पात्र में भस्कर रखो। यज्ञ आदि उत्तम काम करना ही सर्वदा उन्नत करने वाले परमात्मा की स्तुति कहा गया है।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।

देवेभिर्मानुषेजने।। साम. मंत्र संख्या 1474

अर्थ-(त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वान्। (यज्ञानां) यज्ञों का (होता) कर्त्ता (विश्वेषां सम्पूर्ण विश्व का (हितः) भला करने वाला (देवेभिः) उत्तम गुणों द्वारा (मानुषे) मनुष्य का (जनेः) समाज में।

भावार्थ-यज्ञ करने वाले विद्वान् के द्वारा समाज के सभी मनुष्यों का कल्याण होता है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि दैनिक यज्ञ का कर्ता के बल अपने को ही पवित्र नहीं करता है वरन् विश्व का भी कल्याण करता है।

पृष्ठ 2 का शेष-यज्ञ का स्वरूप

यज्ञकुण्ड में आहुति देना ही यज्ञ नहीं होता। वैदिक ऋचाएँ आत्मा को आहुत कर देने, सर्वस्व समर्पित कर देने, लोक निर्माण एवं लोक कल्याण के लिए स्वार्थ को त्याज्य स्वीकार करने में सहायक हो तभी यज्ञ सम्पन्न होता है। क्योंकि तीनों तल वहाँ उपस्थित होते हैं। स्वामी दयानन्द से पहले यज्ञ अपने पारिभाषिक अर्थ अग्निहोत्रादि तक ही सीमित था। दयानन्द ने यज्ञ के जिस व्यापक स्वरूप पर उदारता से विचार किया है उससे सब कुछ यज्ञमय हो गया है। उनका भाष्य यह संकेत करता है कि समष्टिभाव से किया जाने वाला कर्म यज्ञमय हो जाता है। इसीलिए सम्पूर्ण सृष्टि भी यज्ञमयी है। राजा का सुराज्य भी यज्ञ है। शिल्प विद्या भी यज्ञ है। स्वामी जी ने गृहस्थ जीवन को भी यज्ञ कहा है ईश्वर विद्वान और ईश्वराज्ञा की पालना भी यज्ञ है। इतना ही नहीं, दुष्टों का नाश भी यज्ञ है इन्द्र वृत्र का व्रज भी यज्ञ है। मन्त्रविद्या भी यज्ञ है। (दयानन्द यजुर्भाष्य) इस प्रकार यजमान जब जीवन यज्ञ से मानव जाति को सुगन्धित करने लगता है तो वह देवत्व की कोटि को प्राप्त कर लेता है। मन वचन व कर्म से सतत समर्पण ही यज्ञ है। यही है श्रेष्ठतम कर्म की भावना। इस यज्ञ की भावना से जड़ एव चेतन दोनों का कल्याण होता है तभी तो ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' कहलाता है।

आर्य समाज गौशाला रोड फगवाड़ा की तरफ से 21,000 रुपये का चैक स्थानीय प्रशासन को भेंट किया गया। इस आर्य समाज के प्रधान श्री कैलाश नाथ भारद्वाज जी एवं मंत्री श्री यश चोपड़ा जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपना पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। राशन वितरण की फोटो इससे पूर्व आर्य मर्यादा के अंक में भी प्रकाशित की गई थी। शेष फोटो इस अंक में प्रकाशित की जा रही हैं।

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना की तरफ से गरीब परिवारों को राशन वितरित किया गया। यह आर्य समाज लगभग एक सप्ताह तक लंगर बना कर भी आम जनता में बांटती रही।

आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर के पदाधिकारी गरीब परिवारों को राशन वितरित करते हुये। इस आर्य समाज ने लगातार 28 दिनों तक राशन वितरित किया।

आर्य समाज राजपुरा जिला पटियाला के पदाधिकारी गरीब परिवारों को राशन वितरित करते हुये। इस आर्य समाज ने लगभग एक लाख रुपये का राशन वितरित किया।

आर्य समाज औहरी चौक बटाला के पदाधिकारियों ने गरीब परिवारों को राशन वितरित किया।

श्रीराम आर्य सी.सै.स्कूल पटियाला एवं आर्य समाज घिलौड़ी गेट पटियाला ने संयुक्त रूप से 30,000 रुपये का चैक स्थानीय प्रशासन को गरीबों को राशन वितरण करने के लिये भेंट किया।

चित्र एक में आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार लुधियाना के पदाधिकारी गरीब परिवारों को भोजन वितरित करते हुए। इस आर्य समाज ने कई दिनों तक गरीब परिवारों एवं मजदूरों के लिये भोजन इत्यादि का प्रबन्ध किया। दूसरे चित्र में आर्य समाज चौक बठिंडा के पदाधिकारी गरीब परिवारों को राशन वितरित करते हुए। जबकि तीन नम्बर चित्र में श्री लाल बहादुर शास्त्री आर्य महिला कालेज बरनाला एवं आर्य समाज बरनाला के संयुक्त प्रयास से तीन हजार के करीब मास्क बना कर एस.एस.पी. बरनाला को दिये गये। ताकि इन मास्कों को गरीब परिवारों में वितरित किया जा सके। इस आर्य समाज के पदाधिकारियों ने कहा कि हम कम से कम 10,000 मास्क तैयार करके गरीब परिवारों में बांटना चाहते हैं और हम इन मास्कों को जल्द से जल्द तैयार कर लेंगे।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**